IJAER/June-July 2014/Volume-3/Issue-4 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

हिन्दी लघुकथा में व्यक्ति की उदात्त भावना

डॉ. नवनीत वर्मा
व्याख्याता (हिन्दी)
चौ. ब.रा.गो. राजकीय कन्या महाविद्यालय, श्रीगंगानगर

व्यक्ति जहाँ एक तरफ धन की मैराथन दौड़ में शामिल है, पाष्चात्य सभ्यता संस्कृति क रंग में सराबोर होता हुआ अपने जीवन के उच्च आदर्षों को दांव पर लगा रहा है, वहीं दूसरी ओर व्यक्ति अपने उच्च आदर्षों की रक्षार्थ अपना सर्वस्व न्यौछावर करने से भी नहीं चूकता। "इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि प्रलोभन और स्वार्थ नीति सम्पन्न व्यक्ति को विचलित नहीं कर सके हैं।"[1] हालांकि व्यक्ति की यही उदात्त भावना के स्वरूप का हिन्दी लघुकथा में बहुत ही कम चित्रण हुआ है परन्तु फिर भी नैतिक चेतना की चर्चा में इस संदर्भ को अपनी दृष्टि से ओझल नहीं कर सकते हैं।

आज भी व्यक्ति अपने परम्परागत आदर्षों से पूर्णतः जुड़ा हुआ है। उनकी रक्षा के लिए निरन्तर संघर्ष करता है। रमेष चन्द्र श्रीवास्तव की लघुकथा "पहला पाठ" का नायक भी रिष्वत लेने व देने के खिलाफ है परन्तु ऑफिस के अन्य कर्मचारी उसे इस कार्य के लिए उकसाते हैं तो वह कहता है–

"आपको शर्म आनी चाहिए, आपको चाहिए कि आदमी कहां से किन–किन परिस्थितियों को झेलते हुए यहां आया है। क्या इन्सानियत का पहला पाठ यही सिखा रहे हैं? क्या ऐसा व्यवहार करके आप अग्रज होने का दावा कर पायेंगे?"[2]

टूटते जीवनमूल्यों के इस युग में व्यक्ति अपने आदर्षों पर दृढ़ है। डालचंद की "दर्द का नायक अपने मिश्र के दो नम्बर के धंधे के विपक्ष में कहता है–

"क्या यह वही सुदेष है जिसके कई काम मैं कर चुका हूँ, चाहता तो हजारों की रिष्वत ले सकता था इससे लेकिन मेरा उसूल...."[3]

कई बार व्यक्ति अपने रिष्ते से ज्यादा अपने पेषे को अत्यधिक महत्त्व देता है। अमरा राम की 'पेषा और रिष्ता" में भी जब रिष्ते का दबाव देकर एक सज्जन द्वारा काम करवाया जाता है तो पेषे से वकील सज्जन बोलते हैं–

"यह मेरा पेषा है इसमें रिष्ता दखल नहीं दे सकता। पेषा अलग चीज है और रिष्ता अलग।"[4]

कई बार व्यक्ति अपने जीवन की गरिमा के समक्ष अपने व्यक्तिगत सुखों का भी त्याग कर देता है। कमलेष भट्ट की 'प्राथमिकता'[5]। के नायक की वर्षों से वैष्णो माता के दर्षन की तमन्ना पूर्ण होने जा रही थी परन्मु जिस दिन उसे जाना होता है उसी दिन वह अपने स्कूल के हैड मास्टर जो कि आर्थिक रूप से इतने अक्षम हो चुके होते हैं कि लड़की की शादी का बोझ नहीं उठा पा रहे थे, लघु कथा नायक यह स्थिति देखकर अपने स्वप्न की कुर्बानी देकर पांच सौ रुपये उन्हें दे देता है व माता के दर्षन की यात्रा को निरस्त कर देता है।

आजकल ऐसे सम्बन्धी भी मिलते हैं जो अपने पुत्र की शादी में लालची दृष्टि नहीं रखते। वर्षा रानी की लघुकथा "दहेज क्या था" में कन्या पक्ष में पिता द्वारा पर को दी गई पचास हजार की रकम लड़के पक्ष के पिता उन्हीं के दुर्घटनाग्रस्त होने पर खर्च देते हैं और लड़की के पिता द्वारा पैसा न लेने पर कहते हैं–

"मेरे नहीं आपके रूपये ही तो खर्च हुए हैं। आपने पचास हजार मुझे दिये हैं कि नहीं? समधी जी यह आपकी पुत्री का नहीं..... आपका धन लगा है आपमें।"[6]

वर्तमान में पुलिस की छवि ज्यादा अच्छी नहीं है पुलिस वर्ग का अंधकार पक्ष ही ज्यादातर अधिक मुखरित है। सभी पुलिस कर्मियों को एक ही जैसा देखना गलत है। उनके ईमान और आदर्ष अभी जिन्दा हैं। सुखविन्दर कुमार की 'पुलिस वाला'[7] में जब एक भूखी महिला डबलरोटी चुराकर भाग जाती है तो सिपाही उसके भूखे बच्चों को देखकर द्रवित हो जाता है और उस औरत की चुराई डबल रोटी का भुगतान स्वयं करने को उदात्त हो उठता है।

इसी तरह अषोक भाटिया की 'भीड़'[8] में गरीब युवती दवाई के पैसे दिये बिना ही भाग जाती है तो सिपाही धीरे–धीरे औरत के घर जाकर उसकी दयनीय स्थिति को भांप लेता है और केमिस्ट को उसके बीस रुपयों का भुगतान भी कर देता है।

संवेदनहीनता के इस माहोल में कुछ लोग भी ऐसे होते हैं जो दूसरों के दुःख–दर्द को समझते हैं। सुरेष जांगीड़ 'उदय' की 'इंतजार' का भावुक नायक भी अपनी नौकरानी को जल्दी छुट्टी इसलिए दे देता है कि उसके छोटे–छोटे बच्चे रो रहे होंगे। नायक सोचता है–

"मैं युवा हूँ नौकरानी, नौकरी की सीमा से निकल कर अब तक एक मां हो गई होगी और जल्दी–जल्दी अपने घर की तरफ बढ़ रही होगी।"[9]

मनुष्य की यह उदात्त भावना ही है जिसमें वह अपने आदर्षों– उसूलों के रक्षार्थ मृत्यु का वरण भी कबूल कर लेता है। सुरेष डुग्गर की 'धर्म' के अन्तर्गत दंगे के माहौल में बाबू गुरनाम सिंह को परिवार समेत अपने यहाँ शरण देता है परन्तु कुछ देर में अपने घर के समक्ष भीड़ को देखा करता है जो गुरनाम सिंह को बाहर निकालने की धमकी दे रही होती है। बाबू भीड़ को कहते हैं–

"गुरनाम सिंह मेरे मेहमान हैं और मेहमान की रक्षा करना मेरा धर्म है। उसको हाथ लगाने से पहने तुम सबको मेरी लाष से गुजरना होगा।"[10]

व्यक्ति का प्राणियों के प्रति मोह उसकी उदात्त भावना का परिचय दिलाती है। लखन स्वर्णिक की "जिजीविषा"[11] में जब संतरी बछड़ों को अपने मालिक के हाथों पिटते देखता है तो वह यह अत्याचार बिल्कुल सहन नहीं कर सका और बछड़े को गोद में उठाकर धधकती आंखों से मेमसाहब की ओर देखते हुए नौकरी छोड़कर बाहर निकल जाता है।

कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो किसी को भूखा व फटेहाल नहीं देख सकते। अषोक भाटिया की 'भूख'[12] में खाना खा रहा युवक जब फटेहाल भूखे व्यक्ति को देखता है तो उसे बड़े ही स्नेहपूर्वक अपने पास बिठाकर भोजन करवाता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि परिवर्तित जीवन मूल्यों के समक्ष व्यक्ति अपने नैतिक आदर्ष–मूल्यों को अपने जीवन की गरिमा मानता हुआ उनका निर्वाह कर रहा है।

संदर्भ–

1. सरला गुप्ता "भूपेन्द्र" : समकालीन हिन्दर नाटक, पृ. 158
2. सौमित्र / रजिाक : अभिव्यक्ति, पृ. 63
3. उमाशंकर मिश्र : प्रतिबिम्ब, पृ. 48
4. महलान / योगी : सबूत दर सबूत, पृ. 46
5. सोमित्र / रजिाक : अभिव्यक्ति, पृ. 66
6. वही, पृ. 72
7. वही, पृ. 76
8. कृपाल सिंह / यष खन्ना : सुबह होने को है, पृ. 19
9. रजिका / सौमित्र : अभिव्यक्ति, पृ. 108
10. रजिका / सौमित्र : अभिव्यक्ति, पृ. 110
11. उमा शंकर मिश्र : प्रतिबिम्ब, पृ. 51
12. महलान / योगी : सबूत दर सबूत, पृ. 24